

# बहुभाषिकता गाँधीजी की भाषा नीति और भाषा चिंतन

चित्रा सिंह\*

भारतीय समाज एक बहुभाषिक समाज है, इस तथ्य से हम सब वाकिफ हैं, लेकिन हमारी शिक्षा नीति और पाठ्यचर्या में इस तथ्य को किस तरह समाहित किया जाए कि हमारे बहुभाषिक समाज की विभिन्न भाषाओं के मध्य एक सामंजस्य बना रहे और कोई भी भाषा विशेष स्वयं को अपेक्षित अनुभव न करे, इस बारे में बहुत गहनता से विचार नहीं किया गया है। बहुभाषिक समाज को एक संपर्क भाषा की भी आवश्यकता होती ही है, इसे हमारी राजनीति ने अनंत बहस का मुद्दा बनाकर विदेश की एक ऐसी भाषा को प्रतिष्ठा दे दी है जो हमारी जातीय अस्मिता से कतई मेल नहीं रखती। इस परिदृश्य में जब हम गाँधीजी के भाषा संबंधी विचार और चिंतन का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि स्वतंत्रता संग्राम नेतृत्व के अपने व्यस्ततम दौर में भी उन्होंने आने वाले समय और परिस्थितियों, विशेष रूप से शिक्षा के क्षेत्र में भाषा शिक्षण का क्या स्वरूप होना चाहिए और कैसे इसे कार्यरूप में परिणित किया जा सकता है, इस पर गहराई से चिंतन किया था और आगे आने वाली कठिनाइयों को भाँपकर उन्हें दूर करने के उपाय भी दे दिए थे। जो विचार उन्होंने प्रस्तुत किए थे वे मात्र सैद्धांतिक नहीं थे, वरन् व्यावहारिक भी थे और आज भी हैं। सिद्धांतों का व्यावहारिक निरूपण गाँधीजी के जीवन दर्शन का प्रस्थान बिंदु रहा है, वे वही विचार प्रस्तुत करते थे जिसे वह अपने जीवन में अपना चुके होते थे। इसलिए गुजराती होते हुए भी उन्होंने हिंदी/ऊर्दू और दक्षिण भारतीय भाषाएँ स्वयं सीखीं और बताया कि शिक्षा का माध्यम भले ही मातृभाषा हो, लेकिन देश की एक संपर्क भाषा भी हो और हर देशवासी मातृभाषा के अलावा कम-से-कम एक अन्य प्रांत की भाषा भी सीखे-जाने। एक बहुभाषिक राष्ट्र की भाषा नीति के लिए ये विचार बहुत महत्वपूर्ण हैं और वर्तमान परिदृश्य में यह और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं, जबकि त्रिभाषा फ़ार्मूले पर आधारित हमारी भाषा नीति में मातृभाषा और अंग्रेज़ी के बाद तीसरी भाषा के रूप में अन्य विदेशी भाषाओं को स्थान दिया जाने लगा है जबकि तीसरी भाषा हमारे देश के प्रांतों की भाषा भी हो सकती है, इस पर विचार भी नहीं किया जा रहा है। इस लेख में हमारी भाषा नीति की इस विडंबना को गाँधीजी के भाषा चिंतन के प्रकाश में देखने का प्रयास किया गया है और गाँधीजी के विचार किस तरह आज भी कार्यान्वित किए जा सकते हैं, इस बारे में सुझाव भी दिए गए हैं।

### प्रस्तावना

भाषा का प्रश्न एक जटिल प्रश्न है और एक संवेदनशील मुद्दा भी। भारत जैसे बहुभाषीय समाज में यह और भी जटिल हो जाता है। क्योंकि भाषा ही आत्मसम्मान, आत्म-अन्वेषण, आत्म-उत्खनन, आत्म-बोध और आत्म-साक्षात्कार का माध्यम होती है। एक संस्कृति के स्वप्नों, संकल्पनाओं को भाषा की स्मृतियाँ ही सुरक्षित रखती हैं।

गाँधीजी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इसका अनुभव कर भविष्य में आने वाली कठिनाइयों को भाँप लिया था और इन्हें दूर करने के उपाय भी सुझा दिए थे, यही नहीं उन पर अमल भी प्रारंभ कर दिया था। आज जब हम भाषाओं को लेकर हमारे मतभेदों को, राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर एकमत के अभाव और भाषाओं को लेकर हमारी संवेदनहीनता पर भी विचार करें तो हम एक बार फिर गाँधीजी की दूरगामी सोच और दूरदर्शिता का अनुभव कर सकते हैं। लेकिन बात सिर्फ अनुभव करने की नहीं उनकी ही तरह अमल में लाने की भी है। कुछ तमाम आदर्शों को तो हमने भुला दिया है और उन विचारों के पालन को हमारी मानवीय क्षमताओं के परे मान पूजनीय मात्र बना दिया है, लेकिन जैसा हम ऊपर कह चुके हैं भाषा का प्रश्न एक जटिल प्रश्न है और इसका उत्तर गाँधीजी की भाषा नीति और दृष्टि पर विचार और अमल करके पाया जा सकता है। यह ऐसा मुद्दा भी है जिस पर हमारा हमेशा से तात्कालिक रवैया रहा है और इस पर 'राजनीति' ही ज्यादा होती रही है, अब हमें इस बारे में गंभीर होना होगा, क्योंकि अंग्रेजी के बाद दूसरी यूरोपीय भाषाओं का हस्तक्षेप भी प्रारंभ

हो गया है और इससे आजादी हमें एक बार फिर गाँधीजी ही दिला सकते हैं।

### गाँधीजी और अंग्रेजी

इंग्लैंड में शिक्षित होकर भी गाँधीजी देश में अंग्रेजी के बढ़ते प्रभुत्व को लेकर बहुत सजग थे वे *यंग इंडिया* में लिखते हैं, "बहुत से मामलों में, शिक्षा का एक ही अर्थ लगाया जाता है — अंग्रेजी का ज्ञान मेरी नजर में यही हमारी गुलामी और निम्नता का चिह्न है। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि भारतीय भाषाएँ कुचल दी जाएँ और उनको पोषण न मिले।" (*यंग इंडिया*, 1921)

हरिजन के 1947 के एक अंक में वह यह रेखांकित करते हैं कि, "अंग्रेजी शिक्षा ने हमारे दिमागों को कंगाल बना दिया है, कमजोर कर दिया है और हमें साहसी नागरिकता के लिए कभी तैयार नहीं किया।"

गाँधीजी आगे कहते हैं, "मेरा सुविचारित मत है कि अंग्रेजी की शिक्षा जिस रूप में हमारे यहाँ दी गई है, उसने अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयों का दुर्बलीकरण किया है।"

उन्होंने इसलिए *हिंद स्वराज* में स्वीकारोक्ति की है कि, "अपने देश में गर मुझे इंसफ पाना हो तो मुझे अंग्रेजी भाषा का उपयोग करना पड़े। बैरिस्टर होने पर मैं स्वभाषा बोल ही नहीं सकूँ। दूसरे आदमी को मेरे लिए तरजुमा कर देना चाहिए। यह कुछ कम दंभ है? यह गुलामी की हद नहीं तो और क्या है? हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं।" गाँधीजी की अंतरात्मा से निकले ये बीज वाक्य आज ज्यादा महत्वपूर्ण हैं और यह सौ फ्रीसद सही हैं कि "हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं।"

एक बार गाँधीजी बनारस हिंदू विश्वविद्यालय गए। उन्होंने वहाँ के प्रवेश द्वार पर लक्षित किया कि 'बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी' अंग्रेज़ी में लिखा है और इसने तीन-चैथाई जगह घेर रखी है। यही नाम हिंदी में इतने छोटे हरफ़ों में लिखा था कि पढ़ा नहीं गया। इसे अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद का सबूत मानते हुए गाँधीजी ने अपने भाषण में कहा, "अंग्रेज़ों को हम गालियाँ देते हैं कि उन्होंने हिंदुस्तान को गुलाम बना रखा है, लेकिन अंग्रेज़ी के तो हम खुद गुलाम बन गए हैं। आज कोई यह कहता है कि मैं अंग्रेज़ों की तरह अंग्रेज़ी बोल लेता हूँ तो हम मारे खुशी के फूले नहीं समाते। इससे बढ़कर दयनीय गुलामी क्या हो सकती है? इससे हमारे विद्यार्थियों पर अंग्रेज़ी जुबान का बोझ इतना बढ़ जाता है कि उन्हें दूसरी तरफ़ सिर उठाकर देखने की फुर्सत नहीं मिलती। यही वजह है कि उन्हें दरअसल जो सीखना चाहिए, उसे सीख नहीं पाते।"

उस समय बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में सर राधाकृष्णन थे, उन्होंने ही गाँधीजी को बुलाया था।

परंतु गाँधीजी अंग्रेज़ी वर्चस्व के विरोधी थे, अंग्रेज़ी पढ़ने के नहीं। वह एक जगह कहते हैं, "मैं अंग्रेज़-विरोधी नहीं हूँ। मैं ब्रिटेन-विरोधी नहीं हूँ। पर मैं असत्य के विरोध में हूँ, छल-कपट के विरोध में हूँ। जब तक सरकार अन्याय पर आरूढ़ है, तब तक वह मुझे अपना शत्रु, कठोर शत्रु मान सकती है।"

गाँधीजी के अनुसार, "अंग्रेज़ी आज इसलिए पढ़ी जा रही है कि उसका व्यावसायिक एवं राजनीतिक महत्व है। हमारे बच्चे अंग्रेज़ी यह सोचकर पढ़ते हैं कि अंग्रेज़ी पढ़े बिना उन्हें नौकरियाँ नहीं मिलेंगी। लड़कियों को अंग्रेज़ी इसलिए पढ़ाई

जाती है कि इससे उनकी शादी में सहूलियत होगी। मुझे ऐसे परिवारों की जानकारी है, जहाँ अंग्रेज़ी मातृभाषा बताई जा रही है।"

गाँधीजी *हिंद स्वराज* में लिखते हैं, "करोड़ों लोगों को अंग्रेज़ी की शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मैकाले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। यह कितने दुःख की बात है कि हम स्वराज की बात भी पराई भाषा में करते हैं?" गाँधीजी को इस बात का भी कम दुःख नहीं था कि हमारे अच्छे-से-अच्छे विचार प्रकट करने का ज़रिया है, अंग्रेज़ी, हमारी कांग्रेस का करोबार भी अंग्रेज़ी में चलता है। अगर ऐसा लंबे समय तक चला तो मेरा मानना है कि आने वाली पीढ़ी हमारा तिरस्कार करेगी और उसका शाप हमारी आत्मा को लगेगा। हमें समझना चाहिए कि अंग्रेज़ी शिक्षा और भाषा ने हमें गुलाम बनाया है। बैरिस्टर होने पर भी मैं स्वभाषा में बोल ही नहीं सकता। यह गुलामी की हद नहीं तो क्या है? इसमें मैं अंग्रेज़ों का दोष निकालूँ या अपना? हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेज़ी जानने वाले लोग ही हैं। राष्ट्र की हाथ अंग्रेज़ों पर नहीं पड़ेगी, बल्कि हम पर पड़ेगी।" (*हिंद स्वराज*, 1909)

विदेशी भाषा को माध्यम के रूप में सीखने में जो श्रम और समय नष्ट होता है, वह मूलज्ञान को प्राप्त करने पर होना चाहिए। इसलिए उन्होंने 2 सितंबर, 1921 के *नवजीवन* में लिखा था, "अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो तो मैं आज ही विदेशी माध्यम के ज़रिए दी जाने वाली हमारे लड़कों और लड़कियों की शिक्षा बंद करा दूँ और सारे शिक्षकों और प्रोफ़ेसरों से यह माध्यम बदलवा दूँ या उन्हें बर्खास्त कर दूँ।"

गाँधीजी अंग्रेजी भाषा के शत्रु नहीं थे, वे इसे अंतःसांस्कृतिक और अंतःभाषाई मित्र मानने के लिए तैयार थे, किंतु अपनी भाषा की अपेक्षा उसके प्रभुत्व को मानने से इनकार करते थे। वे कहते थे, “यदि विदेशी भाषाएँ और संस्कृतियाँ मेरे घर को सुगंधित करें, तो मैं विदेशी समीर के लिए अपनी चट्टानें खोल दूँगा। किंतु यदि वे तूफान बनकर मेरे घर को उखाड़ना चाहें तो चट्टान की तरह खड़ा हो जाऊँगा।” इस प्रकार हम देखते हैं कि उनका विरोध अंग्रेजी की गुलामी से था, वह गुलामी जो भारतीय भाषाओं को बर्बाद करने पर आमादा थी। भारत का भाषा-संकट अंग्रेजी राज की देन है, इस राजनीति को गाँधीजी अच्छी तरह समझते थे।

किसी विदेशी भाषा की अपेक्षा अपने देश की भाषा के प्रति गाँधीजी के मन में जो संवेदना थी, उसे याद करते हुए हमें यहाँ राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजी के उन शब्दों को उद्धृत करना चाहिए, जो उन्होंने 15 अगस्त, 1947 को *बी.बी.सी. लंदन* के संवाददाता को कहे थे। उन्होंने अपने संदेश में बस इतना कहा था, “दुनिया से कह दो गाँधी अंग्रेजी नहीं जानता।”

### गाँधीजी और मातृभाषा

गांधी जी की अध्यक्षता में वर्धा में 22-23 अक्टूबर, 1937 को एक अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन हुआ था। इसमें प्रस्ताव पारित हुआ कि मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम हो।

वे हिंदी या हिंदुस्तानी के उत्कर्ष के साथ प्रांतीय भाषाओं के उत्कर्ष और इन भाषाओं के आधार पर

राज्य के जातीय पुनर्गठन के समर्थक थे। गाँधीजी ने दृढ़ता से कहा था कि मातृभाषा मनुष्य के मानसिक विकास के लिए उसी प्रकार स्वाभाविक है, जिस प्रकार माँ का दूध शिशु के विकास के लिए है।

वे कहते हैं, “हमारे युवक और युवतियाँ अंग्रेजी और दुनिया की दूसरी भाषाएँ खूब पढ़ें, लेकिन उनसे मैं आशा करूँगा कि वे अपने ज्ञान का प्रसार भारत की ओर से सारे संसार में प्रदान करें।

वे कहते थे, “हमें संकल्प के साथ अपनी सभी भाषाओं को उज्ज्वल, शानदार बनाना चाहिए। हमें अपनी भाषा में शिक्षा लेनी चाहिए, एक पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा का, हिंदू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को फ़ारसी का और सबको हिंदी का ज्ञान होना चाहिए।”

शिक्षा के माध्यम के संबंध में उनके स्पष्ट विचार थे। वे विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाना चाहते थे। वे मातृभाषा में ही बच्चे की शिक्षा के पक्षधर थे। उनका कहना था कि, “जिस प्रकार माँ के दूध से बच्चे के शरीर का निर्माण होता है, उसी प्रकार मातृभाषा के माध्यम से उसके मन और बुद्धि का विकास होता है। शिक्षा का कोई दूसरा माध्यम कैसे हो सकता है? यही तो प्रकृति का विधान है।” (श्रीमन्नारायण द्वारा *ऑन एजुकेशन* में उद्धृत) आज अंग्रेजी राज की बड़ाई करने वालों को गाँधीजी को भी याद करना चाहिए जो कहा करते थे, “विदेशी राज के दुष्परिणाम में से अंग्रेजी शिक्षा माध्यम सबसे भयंकर अभिशाप है और इतिहास इस पाप का सदा के लिए साक्षी रहेगा।” (*नवजीवन*, पृ. 27, 1958)।

गाँधीजी के मतानुसार शिक्षा के माध्यम का निर्णय लेना समूचे राष्ट्र का काम है। भाषाई परिवर्तन से संबंधित कोई भी निर्णय लेना शिक्षाविदों का काम नहीं है। वे इस बात का निर्णय नहीं ले सकते कि देश के बच्चों को अमुक भाषा के माध्यम से पढ़ाया जाना चाहिए। कौन-कौन से विषय बच्चों को पढ़ाए जाएँ, इसका निर्णय लेना भी शिक्षाविदों का काम नहीं है। शिक्षा और शिक्षाविदों का काम देश की इच्छाओं और निर्णयों को दृढ़ संकल्प के साथ पूरा करना है। गाँधीजी चाहते थे कि शिक्षा का निर्णय समूचा देश करे, केवल शिक्षाविद् ही नहीं।

वह यह भी कहते थे, “भारत को अपनी ही जलवायु, दृश्यावली और अपने ही साहित्य से पनपना है, भले ये इंग्लैंड की जलवायु, दृश्यावली और उसके साहित्य से कमतर हो। हमें और हमारी संतानों को अपनी विरासत पर ही अपनी प्रगति का महल खड़ा करना है। यदि हम उधार पर जिएँगे, हम खुद ही अपने को निर्बल कर लेंगे।” (हरिजन, 1938)। ये विचार आज भी सामयिक हैं, बस उन पर अमल का अभाव और बढ़ गया है।

**गाँधीजी की भाषा नीति—हिंदी और हिंदुस्तानी**  
इस बारे में बात करने से पहले हमारी भाषा के इन दो स्वरूपों के बारे में अंग्रेजों की नीति को जान लेना चाहिए। इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है कि ‘हिंदुस्तानी’ भाषा अंग्रेजों का ‘आविष्कार’ थी। वे इसे भारत की संपर्क भाषा के रूप में देखते थे। जॉन गिलक्राइस्ट द्वारा प्रस्तावित ‘हिंदुस्तानी’ मुख्यतः अरबी-फ़ारसी मिश्रित उर्दू और गौणतः खड़ी बोली हिंदी थी। अंग्रेज कलकत्ता की

‘ओरियंटल सेमिनरी’ में जो ‘हिंदुस्तानी’ पढ़ाते थे, वह अरबी-फ़ारसी मिश्रित उर्दू थी। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में भी 1813 तक इसी की परीक्षा होती थी, हालाँकि अंग्रेज संपूर्ण भारतीय विज्ञान का अध्ययन करते थे। 1837 में ‘हिंदुस्तानी’ को ईस्ट इंडिया कंपनी ने संविधान में परिवर्तन करके दरबारी और सरकारी भाषा का दर्जा दिया था। यह पहले फ़ारसी और नागरी, दोनों लिपियों में लिखी जा रही थी, पर जल्दी ही सिर्फ़ फ़ारसी लिपि में सीमित कर दी गई। उस समय हिंदू और मुसलमान एलीट समान रूप से फ़ारसी लिपि में लिखी जा रही उर्दू-उन्मुख ‘हिंदुस्तानी’ का इस्तेमाल करते थे। गौर करने की बात है कि हिंदी-उन्मुख हिंदुस्तानी का नागरी लिपि में लिखी गई खड़ी बोली हिंदी को प्रोत्साहन नहीं मिला, बल्कि अंग्रेजों द्वारा इसे ‘हिंदुस्तानी’ की गंवारू शैली कहा गया। इस ओर भी ध्यान जाना चाहिए कि अंग्रेजों ने ‘प्रेम सागर’ (लल्लू लाल) को हिंदुओं की भाषा का आदर्श रूप घोषित किया था। ‘प्रेम सागर’ की भाषा को भाषा भी नहीं, ‘संपर्क भाषा की एक शैली’ भर माना गया था।

इसके ठीक विपरीत गाँधीजी जिसे हिंदी कहते थे, उसका आशय हिंदुस्तानी होता था, आम आदमी की समझ में आने वाली हिंदी। इसका उद्देश्य था, एक साझे समाज की साझी भाषा बनाना। गाँधीजी की दृष्टि में ‘हिंदुस्तानी’ के कई चेहरे थे, जैसे “किसी बंगाली या दक्षिण भारतीय के द्वारा जो हिंदुस्तानी बोली जाएगी, उसमें संस्कृत मूल के शब्द ज्यादा होंगे।” इससे ऐतिहासिक स्मृतियों में अधिक से अधिक साझेदारी का अवसर मिलता था। गाँधीजी ‘हिंदुस्तानी’ के समर्थक थे। इसका यह अर्थ नहीं

कि वे देश की प्रांतीय भाषाओं और हिंदी-उर्दू के विरोधी थे। वे सभी भारतीय भाषाओं की तरक्की चाहते थे और हिंदी-उर्दू को 'हिंदुस्तानी' का पोषक तत्व मानते थे।

उनके अनुसार, हिंदुस्तानी भाषा वह भाषा है जिसको उत्तर में हिंदू और मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा अरबी लिपि में लिखी जाती है। वह एकदम संस्कृतनिष्ठ नहीं है, न वह एकदम फ़ारसी शब्दों से लदी हुई है। वे कहते हैं, "गाँव की बोली में जो माधुर्य मैं देखता हूँ, वह न लखनऊ के मुसलमान भाइयों की बोली में है, न प्रयाग के पंडितों की बोली में।" स्पष्ट है कि 'हिंदुस्तानी' की औपनिवेशिक धारणा से यह एक प्रस्थान है। गाँव की बोली से गाँधी का तात्पर्य यह सीधी-साधी हिंदी-हिंदुस्तानी है, जिसे हिंदू और मुसलमान दोनों बोलते हैं। हिंदी और उर्दू के बीच कोई विवाद न होता, अगर ये दोनों भाषाएँ साधारण बोलचाल में एक होतीं।

अतः गाँधी-प्रेमचंद के दौर में 'हिंदुस्तानी' एक औपनिवेशिक नहीं, राष्ट्रीय अवधारणा के रूप में सामने आई थी। यह उर्दू और हिंदी के मिले-जुले रूप की परिकल्पना से कुछ अधिक थी। पर यह भाषा अभी सुस्थिर नहीं हुई थी। इसलिए गाँधीजी की 'हिंदुस्तानी' पर बड़ी चकचक हुई। इसे हिंदी और उर्दू को विकृत करने वाली राजनीति कहा गया है। यह भी कहा गया कि अंग्रेज़ी के कारण ही इस देश में नवजागरण आया, राष्ट्रीयता का जन्म हुआ और उससे ही भारतीय भाषाओं ने पोषक तत्व प्राप्त किए। अंग्रेज़ी ही अब देश की संपर्क भाषा है उसे हटाते ही यह देश टूट जाएगा। अंग्रेज़ों ने हमें

स्वाधीनता का मूल्य ही नहीं उसे प्राप्त करने के रास्ते भी बताए हैं। अंग्रेज़ी को छोड़ना देश को बौद्धिक रूप से दिवालिया कर लेना है। कुछ कह रहे थे कि अब तो अंग्रेज़ी भारतीय भाषा है, उसे विदेशी भाषा कहना राजनीतिक विचार से गलत है। इसलिए अंग्रेज़ी वर्ग का हौसला यहाँ तक बढ़ गया था कि वे गाँधीजी और हिंदी को हारी हुई लड़ाई का नाम देते थे और यह हौसला आज भी पस्त नहीं हुआ है।

### राष्ट्रभाषा का प्रश्न और गाँधीजी

राष्ट्रीय आंदोलनों के उभार के साथ भारत की राष्ट्रीय भाषाओं को लेकर प्रतिबद्धता बढ़ रही थी। उस ज़माने के जितने लोकप्रिय और बड़े नेता थे, वे हिंदी को आशा से देखते थे। राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर गाँधीजी का उत्तर स्पष्ट था और वह था 'हिंदी'। उनमें हिंदी के प्रति अदम्य उत्कंठा थी और दक्षिण अफ्रीका में भी गाँधीजी प्रवासी भारतवासियों के बच्चों के ऐसे विद्यालयों का स्व-संचालन ही नहीं करते थे, बल्कि दूसरों को भी प्रेरित कर ऐसी शिक्षा दिलवाते थे, जिससे भारत की मातृभाषाओं के माध्यम से हिंदी को आगे बढ़ाया जा सके। गाँधीजी ने हिंदी को मन, वचन, कर्म से राष्ट्रभाषा के रूप में देश के सामने प्रस्तुत किया।

गाँधीजी ने इसलिए दक्षिण अफ्रीका में ही भारतीयों को इस चेतना से परिचित कराने का काम किया। गाँधीजी की पड़पोती कीर्ति मेनन ने स्पष्ट कहा है कि, "गाँधीजी को भारतीय भाषाओं के साथ जुड़ने का अनुभव और अवसर दक्षिण अफ्रीका के अपने प्रवास के दौरान प्राप्त हुआ, जहाँ उन्होंने हिंदी सीखने की शुरुआत की, जिसे वह अकसर हिंदुस्तानी

कहा करते थे। साथ ही उन्होंने तमिल भाषा को भी सीखना शुरू किया। बाद में टॉलस्टाय फ़ार्म में उन्होंने बड़े स्तर पर भाषाई प्रयोग किए, जिसका नतीजा यह निकला कि वह स्कूल में बच्चों को तमिल और उर्दू पढ़ाने लगे। गाँधीजी के अपने शब्दों में, “हम भाषाई प्रशिक्षण के लिए तीन पीरियड देते थे। हिंदी, तमिल, गुजराती और उर्दू पढ़ाई जाती थी। बच्चों की पढ़ाई उनकी क्षेत्रीय भाषाओं के अनुसार की जाती थी। साथ ही अंग्रेज़ी को भी एक भाषा के रूप में पढ़ाया जाता था।...” इसीलिए गाँधीजी ने हिंदी को भारतीय लोगों को जोड़ने वाली भाषा कहा। गाँधीजी ने एक कदम आगे बढ़कर कहा था कि, “यह एक ऐसी भाषा है जो राज्य, क्षेत्रवाद से उठकर भारत के लोगों को एक सूत्र में पिरो सकती है।” गाँधीजी को यह अनुभव गुलामी के तीव्र और उत्कट दंश का अहसास होने के बाद प्राप्त हुआ था।

इससे पूर्व भारत में स्वतंत्रता के लिए 1857 में लड़ाई लड़ी गई। इस लड़ाई के परिणाम भी मौजूद थे, जिसकी विफलता के कारणों में एक कारण था भारतीयों के बीच संप्रेषणीयता के लिए किसी संपर्क भाषा का न होना। गाँधीजी का ध्यान सर्वप्रथम इसी ओर गया। 1915 में जब वे दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो उन्होंने पूरे देश का भ्रमण किया और पाया कि हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो देश के अधिकांश क्षेत्रों में अधिकतर लोगों द्वारा बोली और समझी जाती है। उन्होंने देखा कि यह देश बहुभाषी देश है और यहाँ अनेक भाषाएँ हैं, किंतु उनके क्षेत्र सीमित हैं। उन्हें हिंदी ही एक ऐसी भाषा मिली जो देश को जोड़ने का काम करती है।

1906 में, *इंडियन ओपीनियन* में उन्होंने इस भाषा को मीठी, नम्र और ओजस्वी भाषा कहा था। 1909 में *हिंद स्वराज* में उन्होंने लिखा, “हर एक पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा को और सबको हिंदी भाषा का ज्ञान होना चाहिए।” वे चाहते थे कि शिक्षित वर्ग के बीच हिंदी को लोकप्रिय बनाया जाना आवश्यक है। भारत आते ही उन्होंने जिन आंदोलनों का नेतृत्व किया, उनमें हिंदी आंदोलन प्रमुख ही नहीं, बल्कि शीर्ष पर रहा। हिंदी सेवा को स्वतंत्रता आंदोलन का एक आवश्यक अंग बनाया गया, जिसके प्रचारक देश में हिंदी प्रचार-प्रसार में लग गए। गाँधीजी के दो मूल सिद्धांत थे – रूई की कताई और हिंदी सीखना।

दिनांक 3 जुलाई, 1917 को उन्होंने कहा था, “हिंदी जल्दी से जल्दी अंग्रेज़ी का स्थान ले ले, यह एक स्वयंसिद्ध उद्देश्य जान पड़ता है। हिंदी शिक्षित वर्ग के बीच समान माध्यम ही नहीं, बल्कि जनसाधारण के हृदय का द्वार बन सकती है। इस दिशा में देश की कोई भाषा इसकी समानता नहीं कर सकती और अंग्रेज़ी तो कदापि नहीं।” गुजरात (भरुच) में दूसरे शिक्षा सम्मेलन के मंच से बोलते हुए गाँधीजी ने 1917 में ही देश की राष्ट्रभाषा के लिए पाँच गुणों की आवश्यकताएँ बताई थीं जो अग्रलिखित हैं—

- वह भाषा सरकारी नौकरी के लिए आसान होनी चाहिए।
- उस भाषा के द्वारा भारत का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक कामकाज पूर्ण होना चाहिए।

- उस भाषा को ज्यादातर लोग बोलते हों।
- वह भाषा राष्ट्र के लिए आसान होनी चाहिए।
- उस भाषा का विचार करते समय क्षणिक या अस्थायी स्थिति पर जोर न दिया जाए।

उन्होंने कहा कि अंग्रेजी भाषा में उनमें से एक भी लक्षण नहीं है।... तब कौन-सी भाषा उन पाँच लक्षणों से युक्त है? यह माने बिना काम चल ही नहीं सकता कि हिंदी भाषा में ये सारे लक्षण मौजूद हैं। (संपूर्ण गाँधी वाङ्मय, पृ. 28) गाँधीजी राष्ट्रभाषा के पाँचों लक्षणों से युक्त भाषा हिंदी को मानते हैं। उनका कथन है, “हिंदी भाषा मैं उसे कहता हूँ जिसे उत्तर में हिंदू और मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या फ़ारसी (उर्दू) लिपि में लिखते हैं। इस व्याख्या का थोड़ा विरोध किया गया।” (आधुनिक शिक्षा के आधार लेख)

वे आगे कहते हैं, “इन पाँच लक्षणों से युक्त हिंदी की होड़ करने वाली कोई और भाषा नहीं है। हिंदी के बाद दूसरा दर्जा बंगला का है। फिर भी बंगाली लोग बंगाल के बाहर हिंदी का ही उपयोग करते हैं। हिंदी भाषी जहाँ जाते हैं, वहाँ हिंदी ही का उपयोग करते हैं और हमसे किसी को अचंभा नहीं होता। हिंदी भाषी धर्मोपदेशक और उर्दू भाषी मौलवी सारे भारत में अपने भाषण हिंदी में ही देते हैं और अनपढ़ जनसाधारण उन्हें समझ लेते हैं। मैंने देखा कि ठेठ द्रविड़ प्रांत में भी हिंदी की आवाज़ सुनाई देती है। यह कहना ठीक नहीं है कि मद्रास में तो अंग्रेजी से ही काम चलता है। वहाँ भी मैंने अपना सारा काम हिंदी से चलाया है। सैकड़ों मद्रासी मुसाफ़ि़रों को मैंने दूसरे लोगों से हिंदी में बातचीत करते सुना है। इसके सिवा,

मद्रास के मुसलमान उर्दू बोलते हैं और उनकी संख्या सब प्रांतों में कुछ कम नहीं है।”

इसलिए उन्होंने सर्वप्रथम दक्षिण भारत में हिंदी का प्रचार शुरू कराया। 1918 में मद्रास के गोखले हाल में एनी बेसेंट की अध्यक्षता में हिंदी प्रचार शुरू हुआ। दक्षिण हिंदी प्रचार सभा की स्थापना की गई। हिंदी प्रचार एक राष्ट्रीय व्रत हो गया, जिसमें दक्षिण के नौजवान बड़ी संख्या में कूद पड़े।

सन् 1910 ई. में हिंदी साहित्य सम्मेलन स्थापित हो चुका था। गाँधीजी के इस साहसिक कदम के कारण हिंदी साहित्य सम्मेलन के इंदौर अधिवेशन सन् 1918 में गाँधीजी को सभापति बनाया गया। यह ऐतिहासिक सम्मेलन था। गाँधीजी ने इंदौर हिंदी साहित्य सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि दक्षिण भारत के तमिल, मलयालम, तेलुगु, कन्नड़ भाषी प्रदेशों में हिंदी के प्रचार की बहुत आवश्यकता है और उसके लिए धन-संग्रह की भी उन्होंने अपील की। गाँधीजी के अनुरोध पर इंदौर के महाराजा यशवंतराव होलकर द्वितीय और नगर सेठ हुकुमचंद ने दस-दस हजार रुपये हिंदी प्रचार कार्य की सहायता में दिए। जिसका उपयोग दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार के लिए किया गया। उसी अधिवेशन में यह प्रस्ताव भी पास हुआ कि दक्षिण भारत के छह युवक हिंदी सीखने के लिए प्रयाग भेजे जाएँ। इसके बाद ही नागपुर के हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में गाँधीजी की सलाह पर हिंदी प्रसार समिति, वर्धा का गठन किया गया। उसके पहले ही दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना मद्रास में की जा चुकी थी। इन बड़ी संस्थाओं की

प्रेरणा से दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार का तीव्र और सार्थक आंदोलन चला। गाँधीजी के नेतृत्व में कार्य करने वाले, देश की आजादी के लिए संघर्ष करने वाले लोगों के सामने, नेताओं और जनता के सामने यह समस्या थी कि स्वतंत्रता के बाद समूचे देश की राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय कार्यों में व्यवहार की भाषा क्या होगी? अतः हिंदी के समस्त प्रांतों में विशेषतः दक्षिण भारत में जो हिंदी शिक्षा के प्रति समर्पण और आकर्षण बढ़ा, वह हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की राष्ट्रीय भावना से अभिप्रेरित था। हिंदी सीखना और सिखाना राष्ट्र निर्माण का कर्तव्य बन गया। इन बड़ी संस्थाओं के कार्यक्षेत्र अत्यंत विस्तृत, व्यापक और हिंदी प्रचार-प्रसार और शिक्षा को सुव्यवस्थित करने के लिए मागदर्शक बनें। प्रदेशीय स्तर पर अनेक संस्थाएँ बनीं जिनमें प्रमुख हैं — हिंदी प्रचार सभा (1935 ई., हैदराबाद), मैसूर हिंदी प्रचार परिषद्, (1943 ई., बैंगलौर), महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, (1945 ई., पुणे), हिंदुस्तानी प्रचार सभा, (1942 ई., वर्धा), केरल हिंदी प्रचार सभा (तिरुवनन्तपुरम्), कर्नाटक हिंदी प्रचार सभा, (धारवाड़)। सन् 1926 में गाँधीजी आजीवन दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास के अध्यक्ष बने। उनका नाम सभापति के रूप में आने से समस्त राष्ट्र के नेताओं का सहयोग इसे मिला। इस संस्था में हिंदू के संपादक ए. रंगास्वामी आयंगर उपसभापति थे। दक्षिण भारत में हिंदी को लोकप्रिय बनाने का कार्य इसी संस्था ने तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषा-भाषी प्रदेशों में किया। अब यह राष्ट्रीय संस्था बन चुकी है जिसके संरक्षक प्रधानमंत्री होते हैं।

गाँधीजी ने यह प्रश्न भी बार-बार उठाया कि हमारा स्वराज कैसा होगा। फिर कहा, स्वभाषा और स्वराज एक-दूसरे से नाभि-नाल संबंध रखते हैं।

सन् 1916 में 16 फरवरी को गाँधीजी 'स्वदेशी की गरिमा' पर स्वभाषा-स्वाभिमान को जोड़कर बोले थे। यहाँ गाँधीजी के इस भाषण को उनके शब्दों में देना ही उचित होगा, "हिंदू शिक्षित वर्ग ने हिंदी को केवल संस्कृतमय बना दिया है। इसके कारण कितने ही मुसलमान उसे समझ नहीं सकते। लखनऊ के मुसलमान भाइयों ने उस उर्दू में फ़ारसी भर दी है और उसे हिंदुओं के समझने अयोग्य बना दिया है। ये दोनों केवल पंडिताऊ भाषाएँ हैं और उनको जनसाधारण में कोई स्थान प्राप्त नहीं है। मैं उत्तर में रह रहा हूँ हिंदू-मुसलमानों के साथ खूब मिला-जुला हूँ और मेरा हिंदी भाषा का ज्ञान बहुत कम होने पर भी मुझे उन लोगों के साथ व्यवहार रखने में ज़रा भी कठिनाई नहीं हुई है। जिस भाषा को उत्तरी भारत में आम लोग बोलते हैं। उसे चाहे उर्दू कहें या हिंदी, दोनों एक ही भाषा की सूचक हैं। यदि उसे फ़ारसी में लिखिए तो वह उर्दू नाम से पहचानी जाएगी और नागरी लिपि में लिखें तो वह हिंदी कहलाएगी। अब रहा लिपि का झगड़ा। कुछ समय तक मुसलमान लड़के फ़ारसी में अवश्य लिखेंगे और हिंदू अधिकतर देवनागरी में। एक दिन हिंदू-मुसलमानों के सारे संदेह दूर हो जाएँगे और तब जिस लिपि का जोर होगा वही राष्ट्रीय लिपि हो जाएगी।"

महात्मा गाँधीजी हिंदी को एक सीमित क्षेत्र की भाषा बनाए रखने के पक्ष में भी नहीं थे। वे इसे पूरे

देश की भाषा और राष्ट्र को जोड़ने वाली भाषा के रूप में विकसित करने के पक्ष में थे। इसीलिए उन्होंने इसे 'राष्ट्रभाषा' की संज्ञा दी थी। इंदौर के अपने भाषण में उन्होंने कहा था, "यदि हिंदी भाषा की भूमि सिर्फ उत्तर प्रांत होगी तो साहित्य का प्रदेश संकुचित रहेगा। हिंदी भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी तो साहित्य का विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। जैसे भाषक, वैसी भाषा।" यही नहीं, गाँधीजी प्रांतीय भाषाओं के विकास को भी आवश्यक मानते थे। उन्होंने कहा था, "मेरा नम्र, लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम हिंदी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी प्रांतीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देंगे, तब तक स्वराज की सब बातें निरर्थक हैं।"

गाँधीजी ने गुजराती में *नवजीवन* का प्रकाशन किया। गुजराती *नवजीवन* के दो साल बाद उन्होंने 19 अगस्त, 1921 को हिंदी *नवजीवन* का भी प्रकाशन शुरू किया। अपने प्रथम अंक में ही गाँधीजी ने लिखा 'यद्यपि मुझे मालूम है कि *नवजीवन* को हिंदी में प्रकाशित करना कठिन है तथापि मित्रों के आग्रहवश होकर और साथियों के उत्साह से *नवजीवन* का हिंदी अनुवाद निकालने की धृष्टता मैं करता हूँ। उन्होंने आगे लिखा "जिस भाषा को करोड़ों हिंदू-मुसलमान बोल सकते हैं वही अखिल भारतवर्ष की सामान्य भाषा हो सकती है।"

इसलिए वे कहते हैं, "सारे हिंदुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए वह तो हिंदी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिंदू-मुसलमान के संबंध ठीक रहें, इसलिए बहुत से हिंदुस्तानियों का इन दोनों लिपियों को जान लेना

ज़रूरी है। ऐसा होने से हम आपस के व्यवहार से अंग्रेज़ी को निकाल सकेंगे। और यह सब किसके लिए ज़रूरी है? हम जो गुलाम बन गए हैं उनके लिए। हमारी गुलामी की वजह से देश की प्रजा गुलाम बनी है। अगर हम गुलामी से छूट जाएँ, तो प्रजा छूट ही जाएगी।" (*हिंद स्वराज*) हमें ध्यान देना होगा कि यह बात गाँधी 1909 ई. में कह रहे हैं — सारे हिंदुस्तान के लिए जो भाषा होनी चाहिए वह तो हिंदी ही होनी चाहिए। गाँधीजी के इस कथन को एक 'पाठ' मानकर पढ़ते हैं तो इस कथन के अनेक अर्थों में से एक अर्थ और निकलता है कि हिंदी से प्रेम भाषा-प्रेम के साथ देश-प्रेम है — विभिन्नता में एकता लाने की ध्वनि है और 'स्वराज' का बड़ा अर्थ भी इसमें समाहित है। गाँधीजी के कथन दिखाई सीधे-सपाट देते हैं। लेकिन उनकी पढ़त-प्रक्रिया जटिल एवं बहुस्तरीय है। इस पाठ का अर्थ बाहुल्य अंग्रेज़ी भाषा की गुलामी से जुड़े संदर्भ में है, पाठ के 'विमर्शों' में है। अंग्रेज़ी की गुलामी से मुक्त होकर हिंदी लाने के पाठ में गाँधी के अभिप्रायों का विचारधारात्मक ढाँचा है जिसे आज बहुत सावधानी से समझने की ज़रूरत है।

गाँधीजी ने 5 फरवरी, 1916 ई. में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के वार्षिकोत्सव में भाग लिया और हिंदी के महत्व पर भाषण दिया। गाँधीजी ने महाराजाओं और भाइयों को संबोधित करते हुए कहा कि, "मैं बहुत ही शर्मिन्दा हूँ कि मैं आपके सामने हिंदी में अच्छी तरह बोल नहीं सकता। आप जानते हैं कि मैं दक्षिण अफ्रीका में रहता था। वहीं अपने हिंदी भाइयों के साथ काम करते-करते थोड़ी बहुत हिंदी सीख सका हूँ। इसलिए आप लोग मेरी

भूलों को क्षमा करेंगे? आप यहाँ यह अनुभव कर सकते हैं कि गुजराती भाषी गाँधी का हिंदी-प्रेम एक अद्भुत तरह का प्रेम था।

गाँधीजी ने आगे कहा, “मैं नहीं जानता था मुझे इस सभा में बोलना पड़ेगा। मैं व्याख्यान देने के लायक भी नहीं हूँ। मुझसे कहा गया कि कुछ कहो। यद्यपि कुछ कहना मेरी शक्ति से बाहर है तो भी दो-चार बातें मैं आपको सुनाता हूँ जो इस समय मेरे खयाल में आई हैं। आप शायद यह जानते हैं कि मेरे साथ तीस-पैंतीस स्त्री-पुरुष हैं। उन सबकी प्रतिज्ञा है कि बराबर हिंदी का अभ्यास करेंगे।” इस सभा में गाँधीजी ने कहा, “इस सभा के जो अधिकारी वकील हैं उनसे मैं पूछता हूँ कि आप अदालत में अपना काम अंग्रेजी में चलाते हैं या हिंदी में? यदि अंग्रेजी में चलाते हैं तो मैं कहूँगा कि हिंदी में चलाएँ। जो युवक पढ़ते हैं उनसे भी मैं कहूँगा कि वे इतनी प्रतिज्ञा करें कि आपस का पत्र-व्यवहार हिंदी में करेंगे।”

वे आगे कहते हैं, नागरी प्रचारिणी सभा का कर्तव्य है कि जो पुस्तकें डॉक्टर जगदीश चन्द्र बसु ने अंग्रेजी में लिखी हैं उनका वह हिंदी में अनुवाद करें। जर्मनी में जो विद्वतापूर्ण पुस्तकें तैयार होती हैं, अंग्रेजी में दूसरे ही सप्ताह उनका अनुवाद हो जाता है, इसी से वह भाषा प्रौढ़ है। हिंदी में भी ऐसा ही होना चाहिए। लोगों को अपनी भाषा की असीम उन्नति करनी चाहिए। क्योंकि सच्चा गौरव उसी भाषा को प्राप्त होगा, जिससे अच्छे-अच्छे विद्वान जन्म लेंगे। ...जिस भाषा में तुलसीदास जैसे कवि ने कविता की हो वह अवश्य पवित्र है और उसके सामने कोई भाषा

नहीं ठहर सकती। हमारा मुख्य काम हिंदी सीखना है, पर तो भी हम अन्य भाषाएँ सीखेंगे। अगर हम तमिल सीख लेंगे तो तमिल बोलने वालों को भी हिंदी सिखा सकेंगे।” (गाँधीजी का व्याख्यान—हिंदी का महत्व)

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह (दिनांक 04.02.1916) में गाँधीजी ने ‘स्वभाषा—स्वराज’ पर ऐतिहासिक भाषण दिया। इस भाषण में गाँधीजी ने भारतीय संस्कृति, परंपरा के संदर्भों को उठाते हुए विषय पर चर्चा की। ध्यान में रखना होगा कि गाँधीजी के लिए आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का केंद्रीय मूल्य थी। उन्हें ध्यान देना होगा कि विदेशी भाषा में बोलना स्वदेश में ‘अप्रतिष्ठा और शर्म की बात है।’ फिर अंग्रेजी में झाड़े गए भाषण हृदय नहीं छूते केवल बुद्धि पर धौंस जमाते हैं। “मैं गत दिसंबर में राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन में मौजूद था। वहाँ बहुत अधिक तादाद में लोग इकट्ठे हुए थे। आपको ताज्जुब होगा कि मुंबई के तमाम श्रोता उन भाषणों से प्रभावित हुए जो हिंदी में दिए गए थे। ध्यान दीजिए यह मुंबई की बात है बनारस की नहीं। जहाँ सभी लोग हिंदी बोलते हैं। मुंबई प्रांत की (सिंधी-गुजराती-मराठी) भाषाओं में उतना फर्क नहीं, जितना और जैसा कि अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं में है।”

इसी तारतम्य में गाँधीजी ने 29 दिसंबर, 1916 में लखनऊ में अखिल भारतीय एक भाषा और एक लिपि सम्मेलन की अध्यक्षता की। इसमें गाँधीजी ने कहा कि, “लोग बाहर जाकर हिंदी पढ़ाएँ। बाहरी लोगों को हिंदी पढ़ाने का सुभीता और यथोचित

प्रबंध करें। जिन प्रांतों में हिंदी का प्रचार कम है, वहाँ हिंदी पढ़ाने वालों की बड़ी कमी है। मैं स्वयं हिंदी सीखना चाहता था। पर अहमदाबाद में कोई हिंदीज्ञाता शिक्षक न मिला। मिला बेचारा एक गुजराती भाषा-भाषी, जिसने 15-20 वर्ष काशी में रहकर टूटी-फूटी हिंदी सीखी थी। उसी से मैंने हिंदी सीखी।” यहाँ गाँधीजी के सभापतित्व में यह प्रस्ताव पारित हुआ कि देवनागरी लिपि और हिंदी भाषा का सार्वदेशिक प्रचार होना चाहिए। देशहित और एक्य स्थापना के लिए इसकी बड़ी ज़रूरत है। मद्रास के श्रीयुत रामस्वामी अय्यर और रंगास्वामी आयंगर तक ने इसका अनुमोदन किया।

गाँधीजी की ही प्रेरणा से 1920 में ‘हिंदुस्तानी’ भारतीय कांग्रेस की भाषा बनी। कांग्रेस द्वारा अपनाई गई हिंदुस्तानी अंग्रेजों द्वारा प्रचलित हिंदुस्तानी से भिन्न थी। दोनों की न केवल भूमिकाएँ अलग थी, बल्कि दोनों में अवधारणात्मक अंतर था। डॉ. ग्रियर्सन तो *दि लैंग्वेजिज़ ऑफ़ इंडिया* पुस्तक में इतना ही कह सके थे कि, ‘वर्नाक्यूलर’ के तौर पर ‘हिंदुस्तानी’ पश्चिमी हिंदी की एक बोली है।’

अपने इस दूसरे स्वतंत्रता आंदोलन को जारी रखते हुए 1918 में गाँधीजी ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के संबंध में रवींद्रनाथ ठाकुर को उनकी राय जानने के लिए पत्र लिखा। इतना ही नहीं, तिलक की अध्यक्षता में 30 दिसंबर, 1917 में वह अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा सम्मेलन में हिंदी को भारत की सामान्य भाषा बनाने की सिफ़ारिश कर चुके थे। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए गाँधीजी का संदेश कभी धीमा नहीं पड़ा। इसका प्रमाण है कि 30 मार्च, 1920 में गाँधीजी ने

विजयनगरम की सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने की अपील की। गाँधीजी के लिए कहना चाहिए कि राष्ट्रभाषा की समस्या बहुजातीय राष्ट्र के गठन और विकास की ऐतिहासिक-राजनीतिक समस्या बनी रही और वे हिंदी तथा भारतीय भाषाओं पर साम्राज्यकारियों द्वारा लादी गई अंग्रेजी भाषा का विरोध करते रहे।

अपने इस दूसरे स्वतंत्रता आंदोलन में गाँधीजी को उन लोगों से लोहा लेना पड़ा जो कहते थे कि हिंदी कोई भाषा नहीं है और देवनागरी घोर अवैज्ञानिक लिपि है। जो भी है, उसे रोमन लिपि में लिखा जाए। सच बात यह है कि अंग्रेजी सरकार स्वयं देवनागरी लिपि लागू नहीं करना चाहती थी। लेकिन गाँधीजी ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद की नीतियों को अहिंसा-सत्य-सत्याग्रह के बल पर चलने नहीं दिया। गाँधीजी ने हिंदुस्तानी और राष्ट्रभाषा को लेकर जो संघर्ष-संग्राम अंग्रेजी साम्राज्यवाद से किया है, वह स्वर्णाक्षरों में लिखकर याद करने योग्य है। भूलना न होगा कि हिंदी से गाँधीजी का आशय संस्कृतिनष्ट हिंदी से नहीं था, उस हिंदी से था जिसे आम आदमी की बोलचाल की भाषा कहते हैं। गाँधीजी ने कहा, “मैं हिंदी और उर्दू का शत्रु नहीं हो सकता। लेकिन मैंने अनुभव किया है कि सामान्य व्यक्ति की भाषा यानी भारत की राष्ट्रभाषा देवनागरी तथा उर्दू लिपियों में लिखी जाने वाली सरल हिंदी तथा सरल उर्दू का सम्मिश्रण अर्थात् हिंदुस्तानी हो सकती है।”

लेकिन गाँधीजी की भाषा नीति में प्रांतीय भाषाओं को दबाने-सताने के भाव का लेशमात्र भी स्थान नहीं है। सन् 1935 में काका साहेब कालेलकर

ने गाँधीजी से कहा कि लोगों में यह अफ़वाह फैली हुई है कि 'हिंदी प्रचार का उद्देश्य प्रांतीय भाषाओं का दमन है। तब गाँधीजी ने साहित्य सम्मेलन के मंच से घोषित किया, 'मेरा कहना बराबर यही रहा है कि प्रांतीय भाषाओं को ज़रा भी आहत हम नहीं करना चाहते, उनका दमन या नाश करना तो दूर की बात है।'

उनकी यह सोच उनके द्वारा संपादित *द इंडियन ओपीनियन* अखबार में नज़र आती है जिसे उन्होंने अंग्रेज़ी के साथ गुजराती, हिंदी और तमिल में भी प्रकाशित किया। तब वे बहुभाषी भारत के अनुरूप भाषाई प्रयोग कर रहे थे और उनका यह निष्कर्ष था कि अंग्रेज़ी में काम करने से हम गुलामी को ही मज़बूत करते हैं।

यह विचार भी गाँधीजी के अनुभव से ही पैदा हुआ था कि भाषाओं के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन हो जिससे प्रदेशों का कामकाज वहाँ की प्रांतीय भाषाओं में चलाया जा सके। गाँधीजी के इसी विचार के आधार पर कांग्रेस कमेटियों का गठन जातीय इलाकों को ध्यान में रखकर किया गया। स्वाधीनता प्राप्त हो जाने के बाद गाँधीजी ने कहा, "प्रांतीय भाषाओं को अपना पूर्ण विकास करना है तो भाषा के आधार पर प्रांतों का पुनर्गठन आवश्यक है। हिंदुस्तानी राष्ट्रभाषा होगी, लेकिन वह प्रांतीय भाषाओं की जगह न लेगी। वह प्रांतों में शिक्षा का माध्यम न होगी, अंग्रेज़ी शिक्षा का माध्यम हो, इसका सवाल ही नहीं है। हिंदुस्तानी का उद्देश्य यह होगा कि वे लोगों को महसूस कराए कि वे भारत के अभिन्न अंग हैं। उनके लिए हम सब हिंदुस्तानी हैं।"

गाँधीजी की पहल पर ही 1935 में कानपुर के कांग्रेस अधिवेशन में उसके विधान में एक संशोधन किया गया कि अखिल भारतीय कार्यवाही हिंदुस्तानी में चलाई जाएगी। यदि कोई सदस्य हिंदुस्तानी न बोल सके तो प्रांतीय भाषा या अंग्रेज़ी का प्रयोग कर ले।

1937 में पहली बार कुछ प्रांतों में कांग्रेस की सरकार बनी तो उन्होंने *हरिजन* में लिखा, हमें शिक्षा माध्यम को तत्काल बदल देना चाहिए। "आहिस्ता आहिस्ता करेंगे।" यह बहाना नहीं चलने दिया जाएगा। यदि हम ऐसा कर डालें तो थोड़े ही समय में पुस्तकें और अध्यापक दोनों तैयार मिलेंगे। एक ही वर्ष में सारा परिवर्तन हो जाएगा। गाँधीजी अंग्रेज़ी को प्रांतीय भाषाओं के विकास में रोड़ा मानते थे। जब तक अंग्रेज़ी का वर्चस्व रहेगा, ये भाषाएँ हरगिज़ पनप नहीं सकतीं। अंग्रेज़ी क्षेत्रीय भाषाओं को एक-दूसरे के समीप आने से भी रोकती है। इसी विचार को व्यक्त करते हुए उन्होंने 1937 में *हरिजन सेवक संघ* के 10 अप्रैल के अंक में लिखा था, "अंग्रेज़ी को प्रांतीय भाषाओं का या हिंदी का स्थान नहीं देना चाहिए। अगर अंग्रेज़ी ने यहाँ के लोगों की भाषाओं को निकाल न दिया होता तो प्रांतीय भाषाएँ आज आश्चर्यजनक रूप से समृद्ध होती... मैं भाषा पर इतना जोर देता हूँ कि राष्ट्रीय एकता हासिल करने का यह एक बहुत ज़बरदस्त साधन है। जितना दृढ़ इसका आधार होगा, उतनी ही प्रशस्त हमारी एकता होगी।"

इसलिए गाँधीजी ने भारत के स्वतंत्र होते ही 21 सितंबर, 1947 को *हरिजन* में लिखा था कि अंग्रेज़ों को शासन से हटाकर राज्यों में राष्ट्रभाषा हिंदी और भारतीय भाषाओं को कार्यान्वित करने के लिए ऐसे

कर्मचारी ही नियुक्त किए जाएँ जो प्रांतीय भाषाओं और राष्ट्रभाषा हिंदी के जानकार हों। इसे कार्यान्वित करने में जितना विलंब होगा, उसी अनुपात से राष्ट्र की सांस्कृतिक क्षति होगी। प्रांतीय भाषाओं को समृद्ध और पुनर्जीवित करना होगा। यह कहना कि कचहरियों, स्कूलों और सरकारी कार्यालयों में यह परिवर्तन लाने में समय लगेगा, सही नहीं है। सरकारी विभागों में प्रांतीय भाषाओं को चलाना तुरंत आवश्यक है। अंतरप्रांतीय भाषाएँ हिंदी के बिना भारत की भाषा नहीं हो सकती हैं। मैं कहता हूँ कि सांस्कृतिक वंचक के रूप में अंग्रेजी को हमें उसी तरह निकाल बाहर करना है, जिस तरह हमने अंग्रेजों के राजनीतिक शासन को सफलतापूर्वक उखाड़ फेंका है। हम अंग्रेजी के गुलाम बने हुए हैं। अंग्रेजी के गुलाम नेताओं को पहले आजाद करना ही पड़ेगा, उसके बाद ही अंग्रेजी की गुलामी से भारत का उद्धार हो सकेगा। गाँधीजी ने लिखा था कि यदि हम अपने देश के बच्चों को भारतीय भाषाओं के माध्यम से सब विषय की उच्च शिक्षा नहीं दे सके और हिंदी को राष्ट्रभाषा नहीं बना सके तो देश की स्वतंत्रता निरर्थक हो जाएगी।

इस प्रकार गाँधीजी की स्पष्ट नीति का ही यह परिणाम था कि स्वतंत्र भारत में नागरी लिपि में लिखित हिंदी को संघ की राष्ट्रभाषा की मान्यता दी गई। वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति हो या मद्रास की दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा हो, गाँधीजी ने गैर हिंदी भाषा-भाषी प्रांतों में हिंदी संस्थाओं का जाल बिछा दिया और उसके माध्यम से हिंदी की शिक्षा व्यवस्था का जो लोकव्यापी आंदोलन चलाया,

उसका परिणाम था कि सारे देश में हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में सर्वमान्य हुई।

### **राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा— 2005 — गाँधीजी की भाषा नीति का प्रतिबिंब**

इस परिदृश्य में यदि हम राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005 का अवलोकन करें तो हम उसमें गाँधीजी के भाषा चिंतन को कार्यरूप में परिणित होता देख सकते हैं। इसके “अध्याय 3 ‘पाठ्यचर्या के क्षेत्र’ शीर्षक भाग में भाषा शिक्षा और शिक्षण की जो रूपरेखा दी गई है, वह गाँधीजी की भाषा नीति को प्रतिबिंबित करती है। यहाँ कहा गया है कि —

- भाषा शिक्षण बहुभाषिक होना चाहिए, केवल कई भाषाओं के शिक्षण के ही अर्थ में नहीं, बल्कि रणनीति तैयार करने के लिहाज से भी ताकि बहुभाषिक कक्षा को एक संसाधन के तौर पर प्रयोग में लाया जाए।
- बच्चों की घरेलू भाषा(एँ) विद्यालय में शिक्षण का माध्यम होनी चाहिए।
- अगर विद्यालय में उच्चतर स्तर पर बच्चों की घरेलू भाषा(ओं) में शिक्षण की व्यवस्था न हो, तो प्राथमिक स्तर की विद्यालय शिक्षा अवश्य घरेलू भाषा(ओं) के माध्यम से ही दी जाए। यह आवश्यक है कि हम बच्चे की घरेलू भाषा को सम्मान दें। हमारे संविधान की धारा 350 (क) के मुताबिक, ‘प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की

पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा।’

- बच्चे प्रारंभ से ही बहुभाषिक शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। त्रिभाषा फॉर्मूले को उसके मूलभाव के साथ लागू किए जाने की ज़रूरत है ताकि वह बहुभाषी देश में बहुभाषी संवाद के माहौल को बढ़ावा दे।
- गैर-हिंदी भाषी राज्यों में, बच्चे हिंदी सीखते हैं। हिंदी प्रदेशों के मामले में, बच्चे वह भाषा सीखें जो उस इलाके में नहीं बोली जाती है। इन भाषाओं के अलावा आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में संस्कृत का अध्ययन भी शुरू किया जा सकता है। बाद के स्तरों पर शास्त्रीय और विदेशी भाषाओं से परिचय कराया जा सकता है।

### उपसंहार

इस प्रकार हम देखते हैं कि गाँधीजी ने राष्ट्रभाषा के विकास के साथ प्रांतीय भाषाओं के साथ उसके समन्वयन की भी रूपरेखा तैयार कर दी थी, जिसे अपनाकर हम आज की भारतीय भाषाओं के आपसी विवादों और इनके फलस्वरूप अंग्रेज़ी के बढ़ते प्रभुत्व पर प्रहार कर सकते हैं। गाँधीजी ने हिंदी को भारतीय स्वतंत्रता की वाणी की संज्ञा दी थी। वे हिंदी के प्रयोग पर बल देते थे। यदि किसी भाषा का प्रयोग नहीं होगा तो वह कैसे लोकप्रिय बनेगी, उनका ऐसा सोचना था। आज हम देखते हैं कि सर्वत्र अंग्रेज़ी का बोलबाला है, क्योंकि हम अपनी भाषा का प्रयोग नहीं करते। क्षणिक स्वार्थ के लिए अंग्रेज़ी का ही प्रयोग कर रहे हैं, फिर हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ कैसे आगे बढ़ सकती हैं?

साथ ही, गाँधीजी के राष्ट्रभाषा संबंधी चिंतन को दो चरणों में बाँटकर देखने की ज़रूरत है। इसके अनुसार पहला चरण *हिंद स्वराज* अर्थात् 1909 से लेकर 1936 तक का है, जिसमें गाँधी लगातार हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की बात करते रहे, लेकिन 1936 के बाद वे आश्चर्यजनक ढंग से हिंदुस्तानी की वकालत करने लगे। *हरिजन* के अक्टूबर 1936 के अंक में उन्होंने एक लेख लिखा — ‘हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू’। अपने मत को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा, “इस हिंदुस्तानी के एक-एक शब्द के अनेक पर्याय होने चाहिए ताकि यह विभिन्न प्रांतीय भाषाओं से समृद्ध और विकासोन्मुख राष्ट्र की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। बंगालियों या दक्षिण भारत के लोगों के सामने बोली जाने वाली हिंदुस्तानी में संभवतः संस्कृत से लिए गए शब्दों का अधिक प्रयोग होगा। वही भाषण जब पंजाब में दिया जाएगा तो उसमें अरबी-फ़ारसी शब्दों की बहुलता होगी। यही बात उस श्रोता वर्ग के संदर्भ में लागू होगी जिसमें मुसलमानों की प्रमुखता हो, क्योंकि वे संस्कृत से लिए हुए बहुत से शब्द नहीं समझ सकते।” यह एक व्यावहारिक सोच थी और है और इस पर अमल किया जाना चाहिए।

कुछ लोग आज कह रहे हैं कि भारत के लिए भाषा का प्रश्न आवश्यक नहीं है। आज आर्थिक-राजनीतिक प्रश्न आवश्यक है। पहले उनका हल होना चाहिए। अंग्रेज़ी के संपर्क भाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा रहने से प्रादेशिक भाषाओं को अपना संपूर्ण प्राप्य संभवतः मिल गया है। उत्तर आधुनिक समय में अंग्रेज़ी अपरिहार्य भाषा कही जा रही है, क्योंकि यही

भाषा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तक पहुँचने का सीधा माध्यम है। आज नेतृत्व करने वालों के लिए भारतीय भाषाएँ नहीं, अंग्रेज़ी आवश्यक है। ये सभी तर्क हमें गाँधीजी की राह से भटकाने के लिए दिए जा रहे हैं। आज के भारत की परीक्षा करनी अनिवार्य है कि सत्तर सालों में हमने भारत को कितना अधिक गुलाम बनाया है। थोड़ा इसका जायज़ा भी लें कि वे किस तरह की ताकतें हैं जो भारत को गुलाम बनाए रखने से

फल-फूल रही हैं। हम उन्हें हरारें और अपनी भाषा के प्रति गंभीरता इसका सबसे बड़ा उपकरण हो सकता है।

भाषा को सशक्त बनाने के लिए *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005* में गाँधीजी की इन नीतियों को एक सकारात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की गई है जो राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त करने में अपना योगदान दे रही है।

### संदर्भ

- गाँधी, एम. के. 1903. *इंडियन ओपीनियन* (6 जून). दक्षिण अफ्रीका.  
 ———. 1956. *थॉट्स ऑन नेशनल लैंग्वेज*. नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद.  
 ———. 2011. *हिन्द स्वराज*. नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद, गुजरात.  
*नवजीवन*. 1921. नवजीवन मुद्रणालय., अहमदाबाद, गुजरात.  
*यंग इंडिया*. अंक 1921, 1924, 1925. अहमदाबाद, गुजरात.  
 वियोगी हरि (संपादक). 1937. *हरिजन सेवक संघ*. अप्रैल अंक. किंग्सवे, दिल्ली.  
 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.  
 शास्त्री, आर. वी. *हरिजन*. अंक 1938, 1947. पूना (पुणे), महाराष्ट्र.  
<https://www.gandhiheritageportal.org/hi/the-collected-works-of-mahatma-gandhi>